आर्थिक दृष्टि से गिरावट आने के बावजूद भी भारत सम्पन्न था। कृषि, उद्योग और विदेशी व्यापार ने भारत को एक समृद्धशाली देश बना दिया था जिसके कारण तुर्की आक्रमणकारी यहाँ पर अतुल धन पा सके।

(1) **व्यापार**—अधिकांश विद्वानों ने यह विचार प्रस्तुत किया है कि पूर्व-मध्यकाल में व्यापार और वाणिज्य में कमी आयी थी। निस्सन्देह, एक दृढ़ केन्द्रीय शक्ति के अभाव में

Scanned with CamScanner

मार्गों का सुरक्षित न रहना, विभिन्न राज्यों द्वारा व्यापारिक वस्तुओं से कर लेना और सामन्ती-व्यवस्था के कारण किसानों का उत्पादन-वृद्धि में रुचि न लेना इस कमी के कारण थे। परन्तु तब भी दैनिक उपभोग की वस्तुओं जैसे नमक, मसाले, कपड़ा आदि का एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की आवश्यकता, शासक-वर्ग के लिए विभिन्न विलासिता की वस्तुओं का एक स्थान से दूसरे स्थान पर आदान-प्रदान तथा व्यापारी-वर्ग की लाभ प्राप्त करने की आकांक्षा के कारण व्यापार किया जाना अनिवार्य था। इस कारण विभिन्न स्थानों पर उत्पन्न वस्तुएँ देश के एक भाग से दूसरे भाग में भेजी जाती थीं और विभिन्न स्थानों ने स्थानीय वस्तुओं के उत्पादन में ख्याति प्राप्त कर ली थी। बंगाल मलमल, सन, पान और सुपारी के लिए प्रसिद्ध था, कलिंग में चावल की विभिन्न अच्छी किस्मों का उत्पादन होता था, गुजरात में सूती कपड़ा, नील और चमड़े की वस्तुएँ तैयार की जाती थीं, मालवा गन्ना, नील और अफीम के लिए प्रसिद्ध था तथा दक्षिण-भारत समुद्र से प्राप्त मोती, मूल्यवान पत्थर, चन्दन और गर्म-मसालों के लिए प्रसिद्ध था। दसवीं शताब्दी के मनुस्मृति के टीकाकार **मेधातिथि** ने जौ एवं चावल सहित सत्रह प्रकार के अनाज को धान्य की श्रेणी में रखा है। कलिंग व मगध प्रदेश अपने चावल की पैदावार के लिए विख्यात था। कश्मीर फलों के लिए प्रसिद्ध था। वहाँ अदरक, मसालों, दालों एवं ईख का उत्पादन व्यापारिक स्तर पर होता था। *कुवलयमाला* और *कथासरित्सागर* के वर्णनों से ज्ञात होता है कि व्यापारी विभिन्न वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाते थे। *कुवलयमाला* में उत्तर और दक्षिण-भारत के व्यापारियों का एक स्थान पर मिलने का उल्लेख किया गया है। आहार (उदयपुर जिला) के दसवीं सदी के अभिलेखों में कर्नाटक, मध्य-देश, गुजरात और पंजाब के व्यापारियों के एक सम्मेलन का वर्णन दिया गया है। इस प्रकार, इस काल में भी आन्तरिक व्यापार प्रचुर मात्रा में होता था। दसवीं और बारहवीं सदी में चौहानों, चन्देलों, परमारों और चालुक्यों द्वारा दृढ़ राज्यों की स्थापना कर लेने पर इस व्यापार की और भी प्रगति हुई।

भारत में आन्तरिक व्यापार सफलता से होता था। सुरक्षा की कमी, विभिन्न राज्यों की सीमाओं पर व्यापारिक-कर आदि की कठिनाइयों के बावजूद भी आन्तरिक व्यापार नदियों और सड़कों दोनों मार्गों से होता था। नदियों के माध्यम से व्यापार करना अधिक सुरक्षित माना जाता था। परन्तु भारत में सड़कों की भी कमी नहीं थी। एक सड़क कन्नौज से प्रयाग होती हुई ताम्रलिप्ति के बन्दरगाह तक और उसके पश्चात् काँची तक जाती थी, एक अन्य कन्नौज से उत्तर-पश्चिम की ओर गजनी तक जाती थी, एक अन्य मार्ग बयाना से राजस्थान होते हुए करांची तक जाता था, और एक अन्य मार्ग दिल्ली से अजमेर और फिर वहाँ से अहमदाबाद तक जाता था। इस प्रकार, भारत के सभी नगर विभिन्न सड़कों द्वारा जुड़े हुए थे और सड़कों की सुरक्षा करना तथा उनकी मरम्मत कराना राजा का कर्तव्य माना जाता था। भारत का व्यापार पूर्व में कामरूप तथा बर्मा और उत्तर में नेपाल, तिब्बत और चीन से भी स्थल-मार्ग से होता था। यहाँ भी विभिन्न मार्ग थे यद्यपि इन मार्गों की यात्रा असुविधाजनक और संकटपूर्ण थी।

(2) **विदेशी व्यापार और सामुद्रिक गतिविधियाँ**—आठवीं सदी से भारत का व्यापार उत्तर-पश्चिमी दर्रों द्वारा मध्य-एशिया, चीन और यूरोप से कम हो गया क्योंकि मध्य-एशिया के व्यापारिक मार्गों पर अधिकार करने के लिए अरब, चीन और तिब्बत में प्रतिस्पर्धा चल पड़ी। बाद में अरबों द्वारा वहाँ पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेने से भारत का व्यापार पश्चिमी एशिया और चीन से कम हुआ। यद्यपि भारत ने इस कमी की पूर्ति कामरूप और असम से तिब्बत और चीन जाने वाले मार्गों द्वारा व्यापार करने का प्रयत्न किया परन्तु तब भी वह प्रयत्न

Scanned with CamScanner

आंशिक रूप से ही सफल हुआ। इस कमी की पूर्ति कुछ मात्रा में उस समय हुई जब चोल-सम्राटों ने दक्षिण-पूर्व की ओर अपनी शक्ति का विस्तार नौ-सेना की शक्ति के आधार पर किया। तब भी पूर्वी-समुद्र में चीन ने और पश्चिमी-समुद्र में अरबों ने अपनी नौ-सेनाओं की शक्ति के द्वारा भारत के विदेशी व्यापार में साझेदारी की। इससे समुद्री व्यापार में वृद्धि तो अवश्य हुई परन्तु अधिकांशतया भारतीय व्यापारियों का कार्य समुद्र-तट तक भारतीय वस्तुओं को लाने का और समुद्र-तट से विदेशी वस्तुओं को लेकर भारत के विभिन्न भागों में भेजने तक सीमित हो गया। भारत की सामुद्रिक गतिविधियों के सीमित होने का कारण यह रहा कि चोल-शासकों के अतिरिक्त अधिकांश भारतीय शासकों ने नौ-सेना के निर्माण की ओर ध्यान नहीं दिया जो उनके सामुद्रिक-व्यापार की सुरक्षा और वृद्धि में सहायक होती। इस कारण भारतीयों के व्यापारिक जहाजों पर भी सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की गयी जबकि अरबों और चीनियों ने अपने व्यापारिक जहाजों की सुरक्षा की भी व्यवस्था की। इसके अतिरिक्त अरबों और चीनियों के व्यापारिक जहाज भारतीयों की तुलना में अधिक बड़े और मजबूत थे। 11वीं सदी में चीनियों ने कुतुबनुमा की भी जानकारी प्राप्त कर ली जिसकी सहायता से उन्हें सामुद्रिक यात्राएँ करने में सुविधा हुई। परन्तु तब भी समुद्री मार्ग से भारतीय व्यापारी पश्चिमी एशिया और उसके माध्यम से यूरोप, दक्षिण-पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों और चीन से व्यापार करते रहे। **मेधातिथि** के अनुसार दक्षिण-भारत बहुमूल्य रत्नों के लिए प्रसिद्ध था। 10वीं सदी के पश्चात् इस व्यापार में और अधिक वृद्धि हुई। यह व्यापार भारत के पक्ष में था और विदेशों से भारत में बड़ी मात्रा में सोना और चाँदी आता था। इस बात का प्रमाण यह भी है कि 1296 ई. में चीन को भारत को होने वाले चाँदी और सोने के निर्यात को रोकने के लिए कुछ नियम बनाने पड़े थे। भारत का विदेशों से यह व्यापार अधिकांशतया समुद्री मार्ग से ही हुआ। भारत के पूर्वी और पश्चिमी तट पर बहुत से बन्दरगाह थे। पूर्वी तट पर ताम्रलिप्ति, सप्तग्राम, पुरी और शिकाकोस प्रमुख बन्दरगाह थे जबकि पश्चिमी तट पर खम्भात, भड़ौंच, थाना और देबल प्रमुख बन्दरगाह थे। उत्तरी-भारत का चीन से व्यापार स्थल मार्ग से भी पर्याप्त मात्रा में होता था। भारत चीन को मुख्यतया गेंडे के सींग, हाथी, चीते की खाल, मलमल और सन भेजता था और उसके बदले में रेशम, रेशमी वस्त्र और सोना-चाँदी आयात करता था।

दक्षिण भारत में आर्थिक जीवन की बड़ी विशेषता उसके सुसंगठित व्यापारिक निगम थे जिनमें उद्योग और व्यापार में सम्मिलित लोगों ने सामूहिक रूप से स्वयं को इनमें संगठित कर रखा था। चालुक्य एवं चोल समकालीन अभिलेखों में तेल का व्यापार करने वाले तैलिक निगम का उल्लेख प्रायः प्राप्त होता है। विभिन्न व्यापारियों के और शिल्पियों के अपने-अपने निगम होते थे। इनमें सर्वाधिक शक्तिशाली **नानादेशि** नामक निगम था। दूर प्रदेशों और विदेशों के साथ व्यापार करने वाले व्यापारी इन निगमों के सदस्य होते थे। लंबे व्यापारिक मार्गों में सुरक्षा के लिए निगमों की इनकी अपनी वेतनभोगी सेना भी होती थी।

दक्षिण-भारत ने इस काल में भारत के विदेशी व्यापार की वृद्धि में बहुत सहयोग दिया। चीनी स्रोतों के अनुसार, दक्षिण-भारत में बने सूती और रेशमी रंगे और छपे हुए वस्त्रों का प्रयोग वैभव का प्रतीक समझा जाता था। कोयम्बटूर में रेशम के बेल-बूटेदार कपड़ों की बुनाई होती थी जो बहुत बहुमूल्य होते थे। वस्त्र के अतिरिक्त दक्षिण-भारत में मलाबार-क्षेत्र में उत्पादित काली मिर्च सम्पूर्ण एशिया में भेजी जाती थी। दालचीनी और लौंग का निर्यात भी यहाँ से बड़ी मात्रा में होता था। दालचीनी श्रीलंका से और लौंग जावा से प्राप्त करके भी निर्यात की जाती थी। मलाबार, कोचीन और त्रावनकोर से विभिन्न प्रकार की अदरक प्राप्त

Scanned with CamScanner

करके उसका बड़ी मात्रा में निर्यात होता था। सागौन और चन्दन की लकड़ी, नील, मेंहदी, गोंद, कीमती पत्थर और समुद्री-मोती भी दक्षिण-भारत से विदेशों को निर्यात किये जाने वाली वस्तुएँ थीं।

इस प्रकार, भारत के निर्यात की मुख्य वस्तुएँ सूती कपड़ा (मलमल, छींट आदि), गर्म-मसाला (काली-मिर्च, लौंग, दालचीनी आदि), चन्दन और सागौन की लकड़ी, हाथीदाँत, गैंडे के सींग, कपूर, समुद्री मोती, कीमती पत्थर, नील, गोंद, मेंहदी आदि थे जबकि उसके आयात की मुख्य वस्तुएँ सोना-चाँदी, हीरे, शराब, रेशमी वस्त्र, खजूर, घोड़ा आदि थे। विदेशी व्यापार भारत के पक्ष में था।

अरबों से सम्पर्क का प्रभाव—अरबों से भारतीयों का सम्पर्क पूर्व-मध्य-काल में सबसे अधिक हुआ। आरम्भ में अरब व्यापार करने के लिए दक्षिण-भारत में आये और पश्चिमी समुद्र पर अधिकार करके उन्होंने भारत के पश्चिमी-एशिया और यूरोप से होने वाले व्यापार में साझेदारी की। इससे उन्हें भारत की समृद्धि, सम्पत्ति और व्यापारिक क्षमता का भी पता लगा। इस कारण भारत में उन्होंने राजनीतिक सत्ता को भी प्राप्त करने का प्रयत्न किया। दक्षिण-भारत में तो वे सफल नहीं हुए परन्तु बहुत प्रयत्न करने के पश्चात् वे सिन्ध और मुल्तान पर आठवीं सदी में अधिकार करने में सफल हो गये। अरबों के भारत के सम्पर्क में आने से जहाँ एक तरफ भारतीयों के व्यापारिक लाभ में कमी आयी वहाँ दूसरी तरफ उनके माध्यम से पश्चिमी देशों से व्यापार में विस्तार करके लाभ भी हुआ। परन्तु इससे अधिक प्रभावशाली प्रभाव अरबों पर भारतीय संस्कृति का आया। अरबों और भारतीयों के व्यापारिक सम्बन्धों ने तो अरबों को भारत में प्रवेश पाकर आर्थिक लाभ की आकांक्षा ही उत्पन्न की थी परन्तु जब उन्होंने सिन्ध और मुल्तान पर विजय प्राप्त कर ली तब उन पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव भी आया। अरबों ने भारतीय संस्कृति के विकास में कोई सहयोग नहीं दिया परन्तु वे स्वयं भारतीय संस्कृति से प्रभावित हुए। अरब भारतीय दर्शन और कलाओं से प्रभावित हुए। शासन-प्रबन्ध में भी उन्होंने भारतीयों से कुछ सीखा। जब अल मंसूर (753-774 ई) खलीफा था तब बहुत से भारतीय विद्वान बगदाद गये। वे अपने साथ **ब्रह्मगुप्त** की *ब्रह्म-सिद्धान्त* और *खण्डखाद्य* नामक पुस्तकों को भी ले गये जिन्होंने वहाँ के विद्वानों को प्रभावित किया। जब हारुन (786-808 ई.) खलीफा हुआ तब उसने भी बहुत से भारतीय विद्वानों को बगदाद बुलाया। उसने उनसे आयुर्वेद, दर्शन-शास्त्र और ज्योतिष-शास्त्र की विभिन्न पुस्तकों का अनुवाद अरबी भाषा में कराया। *चरक-संहिता* और *पंचतन्त्र* के अरबी में किये गये अनुवाद इसके प्रमाण हैं। अरबों ने तप और संन्यास की विचारधारा को भारतीयों से प्राप्त किया। तबरी ने लिखा है कि खलीफा हारुन-अल-रसीद की बीमारी को एक भारतीय वैद्य ने ठीक किया था। अरबों ने अंकों का ज्ञान भी भारतीयों से प्राप्त किया। अरबों ने अपनी इमारतों और मस्जिदों के बनवाने में भी भारतीयों से सहयोग लिया। **हैवेल** ने लिखा है : "जिस समय इस्लाम सीखने योग्य यौवनावस्था में था उस समय उसे यूनान ने नहीं अपितु भारत ने सिखाया। भारत ने उसके दर्शन और आध्यात्मिक धार्मिक आदर्शों का निर्माण किया तथा उसे साहित्य और स्थापत्य-कला की विशिष्ट शैलियाँ प्रदान कीं।" यही नहीं, अपितु **डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव** का कहना है, "अरबों ने भारतीय ज्ञान को यूरोप पहुँचाया, विशेषकर दर्शन, ज्योतिष और अंकों को। आठवीं और नवीं शताब्दी में यूरोप में जो ज्ञान की ज्योति फैली उसका मुख्य कारण अरबों का भारत से सम्पर्क था।"

Scanned with CamScanner